हांधरेन (ए. प्र.)

॥ जैनास्तिकत्वमीमांसा ॥

(अपरनाम)

॥ जैनियोंको नास्तिक कहना भूल है ॥

ॐ

यस्मिन् सन्ति गुणा सर्वे, दोषा नैव स्पृशन्ति यम् ॥
तमहं प्रणमामि देवं वीतरागं सदाशिवम् ॥ १ ॥
आगमेन च युक्त्या च योऽर्थः समभिगम्यते ॥
परीक्ष्य हेमवद् ग्राह्यः पक्षपाताग्रहेण किम् ॥ २ ॥

प्यारे सभ्यमहानुभावो ! अविद्या देवीका प्रभाव कुछ ऐसा विचित्र हैकि, इसकी कृपासे प्राचीन विद्वानोंके हृदयकीभी कुटिल ग्रन्थी नहींखुली । हां इतना तो अवश्य कहना होगाकि, इदानींतन विद्वानोंकी अपेक्षासे उनपर प्रभाव बहुत कम था । आज कलके तो कोइ २ नास्तिक इसके ऐसे प्रेमी हैं– कि, क्षण भरकेलियेभी इसका

विरह सहन नहीं कर सकते । जो मनुष्य स्वामी शंकराचार्य वा अन्य पाश्चात्य विद्वानोंकी लकीरके फकीर बने हुए—अथवा कदाग्रह वशसे जैन धर्मानुयायियोंको नास्तिक कहते हैं, वे सर्वथाभूलमें हैं । इतनाही नहीं बलकि यह भूल उन्हें भवान्तरमेंभी अवश्य हानिप्रद होगी ! यह मेरा विश्वास है । क्योंकि ॥ नानृतात्पातकम्परम् ॥ इत्यादि शास्त्र वाक्यदृष्टि गोचर हो रहे हैं ॥ मैंने इटावा निवासी ब्राह्मण सर्वस्वके सम्पादक श्री प भीमसेन शर्माजीकी बनाई हुई ॥ जैनास्तिकत्व विचार ॥ इस नामकी एक छोटीसी पुस्तक देखी । जिसमें उक्त प जीने जैनोंको नास्तिक सिद्ध करनेकेलिये कई एक उक्ति युक्ति लिखी हैं । उक्त पुस्तकमें प जीका लेख कहांतक सत्यकी पुष्टि करता है, सो विचारशील पुरुष स्वयं देखकर निर्णय कर सकते हैं । मेरा यद्यपि जैन धर्मसे कोई विशेष राग नहीं और सनातन धर्मसे कोई विरोध नहीं प्रत्युत सनातन धर्मको सर्व धर्मोंमें अधिक और निज धर्म मानता हूं । तथापि सत्यका पक्षपाति होना यह मनुष्यके बसे श्रेष्ठ कर्तव्य है ॥ जैनियोंको नास्तिक कहने

हमारा सनातन धर्म्म चरितार्थ हो सकता है, ऐसे कुत्सित संस्कारोंको मेरे हृदयमें स्थान नहीं॥ अस्तु! अब सबसे प्रथम इस बातपर विचार करनेकी आवश्यकता है कि, आस्तिक और नास्तिक इन दो शब्दोंका वस्तुतः अर्थ क्या है? व्याकरण शास्त्रसे इनका कैसा अर्थ होता है? कोशोंमें इनकी बाबत क्या लिखा है? और शास्त्रकारों की विवेचनासे क्या सिद्धान्त निकलता है? फिर उनके साथ जैन धर्म्मके मन्तव्योंका सम्मेलन करनेसे जैनियोंका आस्तिक नास्तिक पना विचारशील और सत्यप्रिय मनुष्योंके लिये निर्विवाद सिद्ध हो जावेगा॥ प्रथम तो व्याकरण के मुख्य मुख्याचार्य-महर्षि शाकटायन, महर्षि पाणीनि., महर्षि पतञ्जलिः, तथा हेमचन्द्राचार्य और टीकाकार-कैयट,भट्टोजि दीक्षित और काशिकाकारादि कोंके लेखमेंकि जिनको जगत्भरके विद्वान् मानते हैं। उनसे आस्तिक नास्तिक शब्दोंका अर्थ दिखाया जाताहै।

तथाहि-दैष्टिकास्तिकनास्तिका ॥ शाक० व्या० अ० ३ पा० २ सू० ६१ ॥

॥ अस्ति परलोकादि मतिरस्य-आस्तिक । तद्विपरीतो नास्तिक । इति तद्वृत्तिकार श्रीमदभयचन्द्रसूरि ॥

॥ अस्तिनास्तिदिष्टं मतिः । पाणिनीऽष्टा० अ० ४ पा० ४ सू० ६० ॥

भाष्यम् ॥ किं यस्यास्ति मतिः आस्तिकः किंचातश्चौरेऽपि प्राप्नोति । एवन्तर्हि इति लोपोऽत्र द्रष्टव्यः । अस्तीत्यस्यमतिः आस्तिकः । नास्तीत्यस्य मतिर्नास्तिकः ॥ इति पतञ्जलिः

॥ प्रदीपम् ॥ अस्ति ॥ चौरेऽपीति–तस्यापि मतिसद्भावात् अचेतनश्च पदार्थो नास्तिकः स्यादिति वक्तव्यम् न्यायस्य तु प्रदर्शनार्थ भाष्यकारेण प्रतिपदमुक्तम् ॥ अस्तीत्यस्येति परलोके सत्ता न सत्ता क्रिया । तत्र विषये लोपे प्रयमदशनात् तत्र परलोकेऽस्ति इति मतिर्यस्य स आस्तिकः तद्विपरीतो नास्तिकः ॥ इति कैयटः ॥

॥ कौमुदी ॥ तदस्त्येवं । अस्ति परलोक इत्येवमतिर्यस्य स आस्तिकः । नास्तीतिमतिर्यस्य स नास्तिकः इति भट्टोजिदीक्षितः
॥ काशिका ॥ अस्ति परलोकादि मतिरस्य आस्तिकः नास्तीति मतिरस्य नास्तिकः ॥

॥ नास्तिकास्तिकदैष्टिकम् ॥ एते शब्दास्तदस्येत्यस्मिन् विषये ठक् प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । निपातनम् रूढ्यर्थम् नास्ति परलोकः पुण्य पापमिति वा मतिरस्य नास्तिकः । अस्ति परलोकः पुण्य पापमिति वा मतिरस्य आस्तिकः ॥ हेमव्या० अ० ६ पा० ४ सू० ६६ ॥

॥ भावार्थ ॥ सबका आशय यह है कि *परलोक (स्वर्ग नरक धर्म्माऽधर्म्म पुनर्जन्म) है ऐसी जिसकी बुद्धि, अर्थात् परलोकको जो माने उसे आस्तिक कहते हैं। एवं परलोक नाम स्वर्ग नरक धर्म्माऽधर्म्म पुनर्जन्म नहीं ऐसी जिसकी बुद्धि अर्थात् इनको जो न स्वीकार करे वह नास्तिक कहाता है ॥

व्याकरणसे तो आस्तिक नास्तिक शब्दका अर्थ दिखादिया अर्थात् परलोकादि हैं ऐसा माननेवाला आस्तिक और परलोकादि कुछभी नहीं ऐसा स्वीकार करनेवाला नास्तिक है यह व्याकरणका सिद्धान्त है ॥ अब कोशसे उक्त दोनो शब्दोंका अर्थ दिखाया जाता है ॥

आस्तिक त्रि० अस्ति परलोक इति मतिर्यस्य ठक् परलो

---

* परलोक -पु परलोक लोकान्तर तच्च स्वर्गादि ॥ इति-शब्दकल्पद्रुम - भा० ३ पृ० ९२ । परलोकगम पु० (परलोके लोकान्तरे गमो गमन यस्मात्) मृत्यु इति हेमचन्द्र । इस लिये परलोक शब्दका अर्थ जो कोई ईश्वर करते हैं यह सर्वथा अशुद्ध है ॥

नास्तिक्यवादिनि शब्दस्तोममहानिधि पृ० १८५ ॥ ॥ नास्तिक त्रि० नास्ति परलोकस्तत्साधनमदृष्टम्-तत्साक्षीश्वरो वा-इति मतिरस्य-ठक् । परलोकाभाववादिनि-तत्साधनादृष्टाभाववादिनि तत्साक्षिण ईश्वरस्याभाववादिनि चार्वाकादौ ॥ ॥ शब्दस्तोम महानिधि पृ० ६३४ ॥ तथा चाभिधानचिंतामणौ का० ३ श्लो० ५२६ । बार्हस्पत्य नास्तिक चार्वाक - लौकायतिक । इति तन्नामानि ॥

॥भावार्थ॥परलोक (स्वर्ग नरक पुण्य पाप जन्म मरणादि पदार्थों) को स्वीकार करनेवालेका नाम आस्तिक है॥ तथा परलोक (स्वर्ग नरकादि) नहीं और उसका साधन अदृष्ट (धर्माधर्म) भी नहीं और उसका साक्षी ईश्वरभी नहीं ऐसा माननेवाला नास्तिक कहलाता है॥ और अभिधान चिंतामणिमें बार्हस्पत्य नास्तिक चार्वाक लौकायतिक यह चार नाम नास्तिक के कहे हैं ॥ सबका गोलार्थ यह है कि स्वर्ग नरक और धर्म्माऽधर्म्मके आचरणसे शुभाशुभ योनिमें गमनागमन (आनाजना) और ईश्वर इन सबके अस्तित्वको जो स्वीकार करे वह आस्तिक है॥ इनसे विपरीत अर्थात् स्वर्ग नरक धर्म्माऽधर्म्म शुभाऽशुभ योनिमें गमनागमन और ईश्वर इन सबके अस्तित्वको न

माननेवाला नास्तिक कहलाता है ॥ सज्जनो! यदि न्याय मार्गसे विचारोतो जो मनुष्य शरीरसे पृथक आत्माका अस्तित्व अगीकार नहीं करता उसके विना नास्तिक ससारमे कोइ हैहि नहीं॥ शरीरसे भिन्न आत्माका अस्तित्व स्वीकार करनाही आस्तिकत्वमे मुख्य कारण है ॥ आत्माका अनगीकार ही नास्तिक पनेमे मुख्य प्रमाण है जैसे ॥

लोकायता वदन्त्येवम् नास्ति जीवो न निर्वृति । धर्म्मोऽधर्मो न विद्येते न फल पुण्यपापयो ॥ एतावानेव लोकोऽय यावानिन्द्रियगोचर —इत्यादि ॥

॥ भावार्थ —॥ आत्मा और मोक्ष कोइ वस्तु नहीं धम्म आर अधर्म्मभी कुछ नहीं–पुण्य पापका शुभाशुभ (अच्छाबुरा) फलभी कुछ नही होता । इतनाही लोक है जो नेत्रादि इन्द्रियोसे देखनेमें आता है अन्य कुछभी नहीं ऐसे लोकायत (नास्तिक) कहते हैं ॥ परन्तु फिर ना मालूमकि, आत्मा परलोक धर्म्मा धर्म्म पुनर्जन्मादि पदार्थोको निस्सन्देह स्वीकार करते हुए भी जैनियोंको नास्तिक कहनेमे आज कलके विद्वान सकोच क्यो नहीं करते ? अस्तु ! अब सक्षेपसे जैन धर्म्मका मतव्य क्या

है सो जैनियोंके ग्रन्थों द्वारा पाठकोंके जाननेके लिये यहां दिखाया जाता है

जैन मतमें जगत् को अनादि माना है। इसके उत्पन्न करनेवाला कोई नही। यह जगत् किसीका रचा हुआ है या इसके बनानेवाला ईश्वर है ऐसी कल्पना जैन ग्रन्थोंमें नहीं। एव जीव जो कर्म्म करता है उसका फल उसके कर्म्मानुसार उसे स्वतन्त्र मिलता है। ईश्वरका इसमें लेश मात्र भी सम्बन्ध नहीं वह ईश्वर हमारी स्तुति वा प्रार्थनासे प्रसन्न होकर हमारे अच्छे बुरे कर्म्मोंका फलदिये विना नरहेगा—इस कल्पनासे भी जैन ग्रंथ बाहिर हैं। ईश्वरको जैन धर्म्ममें परब्रह्म, परमात्मा, सर्वज्ञ, सिद्ध, बुद्ध, ईश, निरजन स्वरूप माना है। परन्तु वह हमारी पूजा भक्तिमें भूल कर न्याय के कांटे (स्वाभाविक नियम) को अणु मात्रभी इधर उधर करे ऐसा नहीं जीवके किये हुए कर्म्मका फल उसे अवश्य भोगना पड़ेगा। अत ॥

अवश्यमेव भोक्तव्य कृत कर्म शुभ ऽशुभम् ॥ नाभुक्त क्षीयत कर्म्म कल्पकोटिशतैरपि ॥

इस वाक्य पर जैनियोंका पूर्ण विश्वास है* ॥ प्राणि मात्रको । कर्म्मानुसारही फल मिलता है-और मिलेगा यह नियम अटल है । इस नियमसे ही सम्पूर्ण जगत्का सूत्र चल रहा है-और चलेगा ॥ ईश्वर इस वखेडेमे कभी नहीं पडता ॥ अत कर्म्मानुसार फलभी जीवको ईश्वरकी इच्छा द्वाराही मिलता है ऐसी कल्पना जैन मतमे नहीं है । जैसेकि लोकतत्व निर्णयमे हरिभद्र सूरि नामक जैनाचार्यने लिखा है —

॥ तस्मादनाद्यनिधनव्यसनोरुभीमम,
जन्मारकोपरदनेम्यतिरागतुम्बम् ॥
घोर स्वकर्मपवनेरित लोकचक्रम्, ।
भ्राम्यत्यनारतमिदं हि किमीश्वरेण ॥ १ ॥

भावार्थ—अनादि अनन्त व्यसनो द्वारा भयके देने वाले हैं जन्मरूप अरे जिनके और दोपरूप है दृढ चक्रकी नेमि धारा जिसकी और रागरूप है घोर नाभि जिसकी ऐसा अपने अपने कर्मरूप वायुसे प्रेरा हुआ यह लोक अर्थात्

---

* नत्थि से कडाण कम्माण अवेइत्ता मोक्खो तवसा वा झोसित्तए । (भगवती सूत्र जैन ग्रथ).

जगत्‌रूप चक्र निरन्तर भ्रमण कररहा हे-तो फिर इश्वरका इसमे अर्थात्‌ कर्मके फल देनेमें क्या सम्बन्ध है ? ॥१॥

जैन ग्रन्थोंमे मुख्यतया प्राय दोही प्रकारके धर्मोंका वर्णन आता है। एक श्रुत धर्म्म दूसरा चारित्र धर्म्म। चारित्र धर्मका यहां कुछ उपयोग न होनेसे श्रुत धर्म्मका ही किञ्चित्‌ स्वरूप वर्णन किया जाता हैं॥ उक्त धर्म्ममे नव तत्व, पट द्रव्य, पट्‌ काय, और चार प्रकारकी गतियों-का वर्णन किया है। जिसमे जीव १ अजीव २ पुण्य ३ पाप ४ आस्रव ५ सम्बर ६ निर्जरा ७ बन्ध ८ मोक्ष ९ यह नव तत्व हैं। जीव नाम आत्माका है। नय तत्त्वा लोका लकारके सप्तम परिच्छेदमे आत्माका लक्षण एसा किया है॥

॥ चैतन्यस्वरूप परिणामी कर्त्ता साक्षाद्‌ भोक्ता स्वदेहपरिमाण प्रतिक्षेत्रभिन्न पौद्गलिकादृष्टवाश्चायमिति॥

भावार्थ-(चैतन्य स्वरूप) ज्ञान स्वरूप (परिणामी) कर्म्मोके सम्बन्धसे देव मनुष्य तिर्यगादि अनेक प्रकारकी योनियोमे उत्पन्न होनेवाला-(कर्ता) शुभाशुभ कर्म्मके करनेवाला (साक्षात्‌ भोक्ता) साक्षात्सुखदु खादिकोको

भोगनेवाला (स्वदेह परिमाण) स्व शरीर मात्रमे व्या पक (प्रतिक्षेत्रभिन्न) हर एक शरीरमे जुदा जुदा और अपने२ करे कर्म्मोंके अधीन जो हो उसको आत्मा कहते हैं ॥

द्रव्यार्थिक नयसे यह आत्मा सदा अविनाशी है। इस आत्मामे ज्ञान दर्शन चारित्रादि अनंत शक्तियें हैं-परन्तु कर्म्मके आवरणसे सब लुप्त हो रही हैं। इसिसे यह आत्मा देव मनुष्य पशु पक्षी कीट पतङ्गादि योनियोंमे भ्रमण करता हुआ सुखदु खका अनुभव करता है ॥ जब साधनद्वारा इस ।त्माके कर्म्म क्षय हो जाते हैं तब यही आत्मा-परब्रह्म परमात्मा सिद्ध बुद्ध मुक्त सर्वज्ञ ईश निरञ्जन स्वरूप हो जाताहै॥जैन मतमे ईश्वर ससारकी उत्पत्ति स्थिति और सहारका कर्ता न होकर परमोत्कृष्ट (मोक्ष) दशाको प्राप्त हुआ आत्माही है अत. जैनी ईश्वरका अस्तीत्व नहीं मानते ऐसा कहना भूल है। किन्तु ईश्वरके मतव्यमे उनका हमारा कुन्छ भेद है ॥ इस लिये जैनी ईश्वरको नहीं मानते यह व्यर्थ अपवाद उनपर लगाया जाता है ॥ जीवसे भिन्न धर्म्म अधर्म्म आकाश पुद्गल (परमाणुसे लेकर जो जो वर्ण

गन्ध स्पर्श शब्दवाला है सो) और काल यह पांच अजीव हैं ॥ जिसके उदय होनेमें जीवको सुख मिले सो पुण्य। और जिसके उदय होनेसे जीवको दु ख हो वह पाप है। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, और योग इनपांचोंका नाम आस्रव है ॥ पूर्वोक्त आस्रवके निरोधका नाम सम्वर है। कर्म्मोंके बन्धनको, तप, जप, ध्यान, चारित्रादिसे पृथक करनेका नाम निर्जरा है । जीव और कर्म्मोंका जो परस्पर क्षीरनीरकी तरह मिलाप होना उसको बन्ध कहते है। साधन द्वारा सम्पूर्ण कर्म्मोंका नाश अर्थात् जीवात्मासे अत्यन्त वियोग (फिर जीवात्माके साथ कभीभी सम्बन्ध न होने) का नाम मोक्ष है ॥ जैसे तत्त्वार्थाधिगममें लिखा है ॥ कृत्स्नकर्म्मक्षयो मोक्ष ॥ अध्याय १० सूत्र ३ ॥

धर्म्मास्तिकाय, अधर्म्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, और काल यह षट्द्रव्य हैं। जीव और पुद्गलके चलनेमें जो सहायक (जैसे मछलीके तैरनेमें जल) उसे धर्म्मास्तिकाय कहते हैं ॥ जीव और पुद्गलकी स्थितिमें जो सहायक (जैसे मार्गमें पथिकको वृक्षकी

छाया) उसे अधर्म्मास्तिकाय कहते हैं ॥ जीवादि सर्व पदार्थोंको रहनेके लिये जो अवकाश दे उसका नाम आकाशास्तिकाय है ॥ जैसे बेरोंको टोकरी ॥ जीवास्ति कायका स्वरूप पूर्व लिख दिया है ॥ परमाणुसे लेकर रूप तेज गन्ध रस स्पर्श शब्द छाया आतप उद्योत पृथिवी चन्द्र सूर्य्य ग्रह नक्षत्र तारे स्वर्ग नरकादि जो स्थान तथा पृथिवी जल अग्नि वायु वनस्पति आदिके शरीर इन सबका जो कारण उसका नाम पुद्गलास्तिकाय है ॥ जो जो दृश्यमान वस्तुओंमे फेरफार हो रहा है, यह सब पुद्गलास्तिकायकी सामर्थ्यसे हो रहाहै॥

जगत्की व्यवस्था (नव पुराण पर्याय) का जो निमित्त उसे काल कहते है ॥ जैन मतमे छहोंको जीव सहित माना है । जिनको पृथिवीकाय, अपकाय, तेजस् काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, और त्रसकाय ऐसे षट् कायाके नामसे कहते है । पृथिवी जिन जीवोंका शरीर उसको पृथिवीकाय, जल जिन जीवोका शरीर उसको अपकाय, एवअग्नि जिन जीवोंका शरीर उसको तेजस्काय तथा वायु जिन जीवोका शरीर उसको वायुकाय, और

वनस्पति (कन्द मूल वृक्ष फल पुष्प लता गुल्म आदि) जिन जीवोंका शरीर उसको वनस्पतिकाय, एव द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय, इन चार जातिके जीवोंको त्रसकाय माना है ॥ पूर्वोक्त पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति इन पांचोंमे एक स्पर्श इन्द्रिय ही है। अत इन पांचोंके जीव एकेन्द्रियही कहलाते हैं। इनका विस्तारसे स्वरूप और पांचोंमे जीवकी सिद्धिका प्रमाण प्रज्ञापनासूत्र और आचारागसूत्रकी निर्युक्ति आदि जैन ग्रंथोंमे लिखा है विशेष जिज्ञासु वहांसे देख लेवें * एव नरक गति, तिर्यग्गति, मनुष्यगति और देवगति, यह चार गतिया हैं जिसमे पहले दु खही दु ख है सुख

* हमारे शास्त्रोंमें वनस्पतिको पृथिवीके अन्तर्भूत मानकर पृथिवी-जल तेज-वायु यह चार तत्व या भूत माने हैं। परतु जैन ग्रन्थोंमे ऐसा नहीं जैन ग्रथोमे तो नका जीव माना है। एव जीवोंने जो अनत परमाणु ग्रहणकर कर्मोंके निमित्तसे अ सख्य शरीरोंका जो पिंड रचा है वही पृथिव्यादि पाचकायहैं। तथा यह पाचोंही प्रवाहसे अनादि हैं। इन जीवोंके विचित्र कर्मोदयसे और परमाणुओंमे विचित्र प्रकारकी शक्ति होनेसे

लेश मात्रभी नहो उसको नरकगति कहते हैं। इन नारकी जीवोंके रहनेका स्थान रत्नप्रभा, शर्करप्रभा, वालुप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तम प्रभा, महातम प्रभा यह सात पृथिवियोमे माना है। यह सातो अधोलोकमे हैं। इन सात पृथिवियोमें रहनेवाले जीवोको नरकगतिके जीव कहते है॥ पृथिवी जल अग्नि वायु वनस्पति कीट पतङ्ग पक्षी और गाय भैस, घोडा, बकरी इत्यादि तिर्यग् गतिके जीव

और तिन शक्तियोंके परस्पर मिलनेसे अनेक तरहके चित्र विचित्र कार्य जगतमे होते है। इन शक्तियोंके परस्पर मिलनेमे कारण काल,स्वभाव,नियति,कर्म और परम्परकी प्रेरणा (आकर्षणशक्ति) यह पाञ्च शक्तिया हैं इन पाञ्चोंके द्वारा परस्पर पदार्थोके मिलनेसे विचित्र प्रकारकी यह जगतरूप रचना अनादि प्रवाहस हुई है और होगी॥ यह पाञ्च प्रकारकी शक्तियेंभी जड और चेतन इन दो पदार्थो केही अन्तर्भूतहै जुदी नहीं अत इस जगत्का कर्ता वा नियन्ता, ईश्वरको न मानकर जड और चेतन पदार्थोंकी शक्तियों कोही कर्ता और नियन्ता जैन ग्रन्थोमे स्वीकार किया है॥ इति॥

हैं । मनुष्य गतिमे यावत् मनुष्य समझने ॥ तथा देव गतिमे भुवनपति, व्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक यह चार प्रकारके देवता माने हैं। तिनमे भुवनपति और व्यंतर यह दो प्रकारके देवता इस पृथिवीमे ही हैं । और सुर्य्य चन्द्र ग्रह नक्षत्र आदि जो आकाशमे देखनेमे आते हैं । यह सब ज्योतिषी देवता कहलाते हैं। इन सबका निवास तिर्यग लोकमे है। और यह सर्व असंख्य हैं। ज्योतिषी देवताओंके उपर बराबर पर सौधर्म्म, ईशान, यह दो देव लोक हैं, उनके उपर, सनत्कुमार और माहेन्द्र यह दो देव लोक है। इनके उपर, ब्रह्म, लांतक, शुक्र सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, और अच्युत ये देवलोक हैं इनके आगे नव ग्रवेयक देव लोक हैं। तिनके भद्र, सुभद्र, सुजात, सौमनस, प्रियदर्शन, सुदर्शन, अमोघ, सुप्रबुद्ध, और यशोधर यह नाम हैं ॥ इनके उपर बराबर पर विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित यह चार विमान पूर्वादि दिशाके क्रमसे हैं । यथवा सर्वार्थसिद्ध नामा इन चारोंके मध्यमे है ॥ यह छवीस स्वर्ग वैमानिक देवताओंके है। और उनकी आयु आवर्णन प्रज्ञापना और संग्रहणी आदि

सूत्रो में है. जैन मत में " ज्ञानावर्णीय, दर्शनावर्णीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अंतराय यह आठ प्रकार के कर्म माने हैं। इनका विस्तार सहित वर्णन 'षट् कर्मग्रंथ' में है। सत्य प्रिय मनुष्यों के लिये तो इस पूर्वोक्त लेख से जैनियो का आस्तिक होना निर्विवाद सिद्ध होगया। क्योंकि यह जीव परलोक पुनर्जन्म धर्माधर्मादि पदार्थों को निस्सन्देह मानते हैं। एव जैनी ईश्वर को सृष्टि कर्त्ता नहीं मानते अतः वे नास्तिक हैं यह कथन भी केवल दुराग्रह मात्र है। क्यों कि ईश्वर सृष्टि का कर्त्ता है वा नही? यह विषय प्रथम से ही विवाद ग्रस्त है. पूर्वमीमासा शास्त्र के कर्त्ता महर्षि जैमिनिजी तथा सांख्य शास्त्र के कर्त्ता महर्षि कपिलजीने स्पष्ट तया ईश्वर के कर्तृत्वका खडन किया है यही नहीं बलकि उक्त दोनो महर्षियोके मतव्य में ईश्वर के अस्तित्वका भी खडन झलक रहा है। महर्षि जैमिनि के मत में इस जगत का कर्त्ता कोई नहीं है किंतु यह जगत् प्रवाह से अनादि और नित्य है। इस का सर्वथा उच्छेद (प्रलय) भी नहीं होता। स्वर्ग ही परम पुरुषार्थ

(मोक्ष) है । एवं सर्वज्ञ देव भी कोई नहीं। अर्थात् सृष्टि का कर्त्ता जीवों के कर्मका फल देनेवाला, सबका नियता सर्वज्ञ ईश्वर जगत में कोई नहीं। इस लिये वेदोंका कोई कर्त्ता सर्वज्ञ ईश्वर न होनेसे वेद अपौरुषेय है। इत्यादि वर्णन कुमारिल भट्टके बनाये हुये 'तन्त्र वार्तिक' में बहुत विस्तार से आता है। विशेष जिज्ञासु वहां देख कर निर्णय कर सकते हैं।

माधवाचार्य प्रणीत शंकर दिग्विजय के सप्तम सर्ग में लिखा है कि 'कुमारिल भट्ट' को परा जय करने के लिये 'शंकर स्वामी' प्रयाग में आये। वहां त्रिवेणी में स्नान कर शिष्य वर्ग सहित तटपर बैठ गये। इतने में लोगों के मुख से यह सुना कि जिसने पर्वत के ऊपर से गिरकर वेद वाक्यों को प्रमाण सिद्ध कर दिखाया वह कुमारिल सर्व वेदार्थ के जाननेवाला अपने दोष दूर करने के लिये तुषाग्नि में दग्ध हो रहा है और शरीर तो जल गया केवल मुख बाकी है। यह बात सुन शीघ्रही 'शंकर स्वामी' वहां पहुंचे। और तुषाग्नि में बैठे कुमारिल को देखा।

' प्रभाकर ' आदि शिष्य उच्च स्वर से रुदन कर रहे हैं। शंकर स्वामी को देख ' कुमारिल भट्ट ' को बड़ा ही आनंद हुआ। तब शंकर स्वामी ने अपना भाष्य दिखलाया देख कर ' कुमारिल ' ने कहा कि आपका भाष्य तो अच्छा है, परंतु इसपर आठ हजार वार्तिक की आवश्यकता है यदि मैंने दीक्षा ग्रहण न करी होती तो मैं इस पर वार्तिक करता, परंतु प्रथम तो मैं बौद्धोंसे शास्त्रार्थ में हारा, फिर उनका ही शरण ले उनका सब शास्त्र सुना। जब उन्होने वैदिक मतका खंडन किया तब मेरी आखोंसे आसु गिर पडे, तबसे उन्होने मेरेको स्वमतानुयायी न समझ कर मेरे ऊपर से विश्वास छोड दिया। हमने स्वमत विरोधी ब्राह्मण को पढाया, इसने हमारे मतका तत्त्व समझ लिया अत इस से उपद्रव करें यह विचार कर मुझ को उच्च प्रासाद से गिरा दिया। गिरते समय मैंने कहा कि, यदि श्रुतिया सत्य हैं तो मैं गिरता हुआ भी जीता रहूं। मेरे बच रहने से श्रुतियां सत्य होगई, परतु मेरा एक नेत्र फूट गया। सो तो विधि की कल्पना है क्यो कि –

एकाक्षरस्यापि गुरुः प्रदाता ।
शास्त्रोपदेष्टा किमु भाषणीयम् ॥
अहं हि सर्वज्ञगुरोरधीत्य ।
प्रत्यादिशं तेन गुरोर्महाग ॥ १०
तदेवमित्थं सुगतादधीत्य ।
प्रागातय तत्तुल्येव पूर्वम् ॥
जैमिन्युपज्ञः मिनिविष्टचेता ।
शास्त्रे निरास्थ परमेश्वरं च ॥ १०२

भावार्थ—एकाक्षरके प्रदान करनेवालाभी गुरु होता है शास्त्र पढानेवालेका तो कहना ही क्या ? मैंने सर्वज्ञ बुद्ध गुरुसे शास्त्र पढकर उसकाही गुरु किया । उनके हा कुलका विध्वंस किया । और जैमिनीय (जैमिनि ऋषिके कहे हुए) मतको स्वीकार कर ईश्वरका खंडन किया, अर्थात् ईश्वर जगतका कर्त्ता और सर्वज्ञ नहीं ऐसा सिद्ध किया। जसाकि तत्र,वार्तिकमें कुमारिल भट्टने लिखा है—

प्रयोजनमनुद्दिश्य, मन्दो-पि न प्रवर्त्तत ।
जगच्चासृजतस्तस्य किंनाम न कृतं भवेत ॥ १ ॥

॥ भावार्थ— ॥ प्रयोजनको न समझ कर नितात मूढभी किसीकार्यमें प्रवृत्त नहीं होता है । अगर जगतको

ईश्वर न बनाता तो उसका क्या नष्ट बना होता ! (अर्थात् उसका ऐसासा कार्य अटक रहाथा !) इन दोनो दोषोके दूर करनेके लिये मैने यह प्रायश्चित किया है इत्यादि

इसमे स्पष्ट सिद्ध हो गयाकि महर्षि जैमिनिके मत में जगतका कर्त्ता ईश्वरको नहीं माना, परतु उन्हें नास्तिक तो कोइ नहीं कहता ! और नाहीं वस्तुत वह नास्तिक माने जा सकते हैं, क्योकि आस्तिक पनेके मुख्य कारण आत्मा, परलोक, धर्म्माऽधर्म्म, पुनर्जन्म आदि पदार्थोको उन्होने निर्भ्रान्त स्वीकार किया है एव सांख्य दर्शन में प्रधानको ही जगतका कारण मान सृष्ट्युत्पत्ति में ईश्वरका अर्थत कुच्छ भी सम्बन्ध नहीं माना तथाच सूत्रम्

ईश्वरासिद्धेः ॥ सांख्य० अ० १ सू० ९२
प्रमाणाभावान्न तत्सिद्धिः ॥सा ५-१०

ईश्वरकी सिद्धि मे प्रमाण न होनेसे ईश्वर जगतका कर्त्ता नहीं अर्थात् ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता है यह बात किसी प्रमाणसेभी सिद्ध नहीं हो सकती ! इसी लिये आगे

चलकर वेदोंके पौरुषेयत्व पर विचार करते हुये महर्षि लिखते हैं कि

न पौरुषेयत्वं तत्कर्तुः पुरुषस्याभावात् । सांख्य० अ० ५ सू० ४६ ईश्वरप्रतिषेधादिति शेषः इति विज्ञान भिक्षु

॥भावार्थ-॥ वेद पौरुषेय (पुरुष विशेषके बनाये हुए) नहीं है। क्योंकि उनके कर्त्ता पुरुषका अभाव होनेसे तात्पर्यकि ईश्वरका सांख्य मतमें निषेध होनेसे ईश्वरसे अतिरिक्त अन्य कोई कर्त्ता सिद्ध नहीं हो सकता। इस विषयपर ' सांख्यतत्व कौमुदी ' में श्री वाचस्पति मिश्रजी यूं लिखते हैं—

' इत्येष प्रकृतिकृतो महदादिविशेषभूतपर्यन्तः । प्रति पुरुष विमोक्षार्थं स्वार्थ इव परार्थ आरम्भः ॥ ' ५६ का

टीका-आरभ्यते इत्यारम्भः सर्गः महदादिभूम्यन्तः प्रकृत्यैव कृतो नेश्वरेण न ब्रह्मोपादानो नाप्यकारणः अकारणत्वे हि अत्यन्ताभावोऽत्यन्तभावो वा स्यात् न ब्रह्मोपादानः चितिशक्तेरपरिणामित्वात् नेश्वराधिष्ठितप्रकृतिकृतः । निर्व्यापारस्याधिष्ठातृत्वासम्भवात् । नहि निर्व्यापारस्तक्षा वास्याद्यधितिष्ठति ॥

भावार्थ-महदादि से लेकर पृथिवी पर्यन्त यह जगत्

प्रधान से ही उत्पन्न हुआ है, अर्थात् इसका कारण प्रकृति ही है ईश्वर नहीं ! एवं ब्रह्म भी इसका उपादान कारण नहीं, क्यो कि चैतन्य अपरिणामी है अर्थात् उपादान कारण होने से वह परिणामी हो जावेगा ! और ईश्वराश्रित प्रकृतिने भी इस को नहीं बनाया क्यो कि व्यापार रहित को अधिष्ठातृपनेका निषेध होनेसे जैसे व्यापार रहित तक्षक (त्रावाण कुठार (कुल्हाडी) से लकडी नहीं काट सक्ता ऐसे व्यापार शून्य ईश्वर भी प्रकृति द्वारा सृष्टि नहीं उत्पन कर सक्ता ! फिर आगे लिखते है कि—

" वत्सविवृद्धिनिमित्तं क्षीरस्य यथा प्रवृत्तिरज्ञस्य ॥
पुरुषविमोक्षनिमित्तं तथा प्रवृत्तिः प्रधानस्य ॥ ५७ ॥ "

टीका-साम्प्रतं प्रेक्षावत प्रवृत्ते स्वार्थकारुण्याभ्यां व्याप्त त्वात् ते च जगत्सर्गाद्व्यावर्तमाने प्रेक्षावत्पूर्वकत्वमपि व्यावर्तयत. नह्यवाप्तसकलेप्सितस्य भगवतो जगत् सृजत किमप्यभिप्सितं भवति प्राक् सर्गाज्जीवानामिन्द्रियशरीरविषयानुत्पत्तौ दु खाभावेन कस्य प्रहाणेच्छाकारुण्यम् । सर्गोत्तर काले दु खिनोऽवलोक्य कारुण्याभ्युपगमे दुरुत्तरमितरेतराश्रय दूषणम् कारुण्येन सृष्टि सृष्टया च कारुण्यम् अपि च करुणया

प्रभिन्न ईश्वर सुखिन एव जनून् सृजेन्न विचित्रान् कर्मवैचित्र्या द्वै वैचित्र्यमिति चेत्तमस्य प्रक्षावत कर्माधिष्ठानेनेति ॥

॥ भावार्थ ॥–प्रेक्षावान की प्रवृत्ति में स्वार्थ और करुणा यह दोही कारण है, परतु जगत् उत्पत्ति के लिये ईश्वर में इन दोनों काही सभव नहीं क्योंकि ईश्वर को कृतकृत्य होने से जगत को रचना करनेसे उसको कुछ लाभ नहीं। अत स्वार्थ का होना तो सभव नहीं। एव करुणासे भी जगतका उत्पन्न करना सिद्ध नहीं हो सकता। क्यो कि सृष्टि से प्रथम जीवों को इन्द्रियादिक न होनेसे दुःख तो थाही नहीं तो फिर किसके दुःख दूर करने की इच्छा से करुणा हुई। यदि ससारमें जीवोंको दुःखी देख करुणा हुइ माने तबतो अन्योन्याश्रय दोष का दूर होना असभव है क्यों कि प्रथम करुणा की सिद्धि हो जावे तो सृष्टि का होना सिद्ध हो। और यदि प्रथम सृष्टिका होना सिद्ध हो जावे तो करुणा का होना सिद्ध हो। और यदि करुणा से प्रेरा हुआ ही ईश्वर सृष्टि की उत्पत्ति करता हो तो सब जीवोंको सुखी उत्पन्न करे न कि विचित्र। यदि कहा जाय कि कर्मों की विचित्रता

मेही जगत्की विचित्रता होती है। तो फिर ईश्वर का क्या काम? इत्यादि लेखोंमें निस्सन्देह ईश्वर के कर्तृत्व का निराकरण हो रहा है, परन्तु क्या महर्षि कपिलजी नास्तिक हैं? कभी नहीं! बलकि आस्तिको के भी शिरोमणि हैं. क्यों कि वह आत्मा, परलोक, धर्म्माऽधर्म्म पुनर्जन्म आदि पदार्थो के मानने वाले आस्तिको में अग्रगण्य हैं

सज्जनो! "सांख्या निरीश्वराः केचित् केचिदीश्वर देवताः" इत्यादि वाक्यो में महर्षि कपिलजी को निरीश्वर वादी (ईश्वरको न मानने वाले) तो माना है, परन्तु उन्हें नास्तिक तो आज तक किसीने न कहा। इस लिये सृष्टिका कर्त्ता ईश्वरको न मानने से यदि जैनियों को नास्तिक कहा जावे तबतो महर्षि जैमिनि, कपिल, कुमारिल, वाचस्पति प्रभाकर प्रभृति सभी ग्रथ कर्त्ता आचार्य नास्तिक ठहरेंगे। बहुत से महानुभाव कहते हैं कि जैनी वेदो को नहीं मानते! प्रत्युत उनकी निंदा करते हैं अत वह नास्तिक है। जैसे कि मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक ११ में लिखा है कि—

योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विज । स साधु भिर्बहिष्कार्यो । नास्तिको वेदनिन्दक

भावार्थ—जो द्विज तर्क के आश्रय से श्रुति स्मृति को न माने निरादर करे उस को श्रेष्ठ पुरुष बाहिर निकाल देवें क्योंकि वेदोंका निन्दक होने से* चार्वाक नास्तिक की तरह वहभी नास्तिक है। परन्तु इस हेतु से भी जैनियो को नास्तिक कहना अनुचित है इसी बात का ही विवेचन आगे होगा।

सज्जनो ! निष्पक्ष होकर सबसे प्रथम इन दोनों बातों पर विचार कर ने की परमावश्यकता है प्रथम तो यह कि जैनी वेदो की निन्दा क्यों करते हैं ? द्वितीय यह कि जैनी ही वेदों के निंदक हैं या और भी कोई ? जैन ग्रंथों के देखने से मालूम होता है कि जैनियो ने वेदो की निन्दा करने में एक मात्र कारण हिंसा माना है उनका विश्वास है कि यज्ञादि विधायक वेदों में

---

* चार्वाकादिनास्तिक इव नास्तिक
यतो वद निन्दक ॥ इति कुल्लूक भट्ट ॥

प्राय हिंसा का ही वर्णन है अब इस पर विचार करना जरूरी है कि जैन ग्रंथों का कहना वा जैनों का मानना कहांतक सत्य है? क्याठीक ही वेदों में हिंसा का विधान है ? वा वृथा ही उन्हो ने वेदों पर लांछन लगाया है ? मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक ७ मे लिखा है कि—

य कश्चित्कस्यचिद्धर्म्मो मनुना परिकीर्त्तित ॥
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि स ॥

भावार्थ—जिस किसी का जो कुछ धर्म्म मनुजी ने कथन किया है वह सपूर्ण वेद में प्रतिपादन करा है क्यों कि मनुजी को सर्वज्ञ होने से आर्थात् मनुजी सर्वज्ञ थे अत उन्हो ने सपूर्ण वेदार्थ को अच्छी तरह जानकर लोगो के उपकार के लिये इस धर्म्म शास्त्र को *बनाया

इस श्लोक से यह भाव निकलाकि जो कुछ मनुजी

---

* यस्मात्सर्वज्ञोऽसौ मनु सर्वज्ञतयाचेत्स्तत्त्वाविप्रकीर्ण पठमानवेदार्थं सम्यक् ज्ञात्वा लोकहितायोपनिबद्धवान् ॥ इति कुल्लूक भट्ट ॥

इत्यादि कई एक ग्रंथो के नाम से प्रसिद्ध हैं जिसमे आप स्तंब गृह्यसूत्र के तृतीय खंड में लिखा है कि—

घ्नाघद् गावालभस्थानमतिथिपितृ विवाहश्च ॥

भावार्थ—अतिथि पूजन (मधु पर्क) पितर (श्राद्ध) और विवाह इनस्थानो में गौ का आलभन (वध) करना

तथा गोभिल गृह्य सूत्र में वास्तु याग का वर्णन है उस में लिखा है कि—

"मध्यऽग्निमुपसमाधाय कृष्णया गवा यजेताजेन वा श्वेतेन सपायसाभ्या पायसेन वा" प्र० ४ खं० ७ सूत्र १६-१९

(पं० सत्यव्रत सामश्रमी कृत टीका) मध्य वास्तुभवनस्य, अग्निमुपसमाधाय पूर्वोक्तविधिना प्रज्वाल्य कृष्णया गवा कृष्णायागौ मांसादिना यजेत इति प्रथम कल्प ॥ श्वेतेन अजेन वा यजेतेति द्वितीय । सपायसाभ्या गोऽजाभ्या पायसेन गोऽजयोरन्यतरेण चाति तृतीय ॥ पायसेन पायसमात्रेणैव इत्य ष्टम कल्प ॥

॥ भावार्थ ॥—वास्तु भूमिपर आग जलाकर काली

गौ के मासादिसे याग करे ! सफेद छाग के मास के साथ भी यह याग हो सक्ता है काली गौका मास या सफद छाग के मास के साथ यदि पायस होतो और भी उत्तम है न होतो केवल पायस सेही करे, परतु केवल पायस के याग का टीकाकार अधम लिखते हैं ॥

एवम् आपस्तम्बीय धर्म्म सूत्र प्र० १ पटल ५ क० १७ सू० ३०, ३१, में लिखा है कि—

धे नवडुहोर्भक्ष्यम् मे यमानडुहमिति वाजसनेयकम् '

(हरदत्त टीका) धे नवडुहोर्मांस भक्ष्यम गोप्रतिषेधस्य प्रतिप्रसव ॥ आनडुहं मांस न केवल भक्ष्य किन्तहि मेध्यमपि इति वाजसनेयिन समामनति ॥

॥ भावार्थ ॥—गौ और बैलका मास भक्षण करने योग्य है, बैलका मास केवल भक्षण करने योग्य है ऐसा ही नहीं, किंतु मेधानुकूलभी है ॥ इत्यादि बहुतसे लेख हैं

अब वेदका भी थोडासा लेख इस विषय में उध्दृत किया जाता है—

पथिभिर्देवयानमार्गं देवान् इन् प्रतिगच्छसि यत्र लोके सुकृत पुण्यात्मानो यन्ति गच्छन्ति दुष्कृतश्च न गच्छन्ति तस्मिन् लोके सविता देवस्त्वा दधातु स्थापयतु ॥

भावार्थ—हे अश्व ! जो हम तेरे को मारते हैं इसमे तूं मरेगा नहीं और तेरा नाश भी नहीं होगा। किंतु देव यान मार्ग से तू देव लोक को प्राप्त होगा जिस लोक में पुण्यात्मा जाते हैं और पापात्मा नहीं जाते उस लोक में सविता देव तुझे स्थिर करे इत्यादि ॥

एव पशु के मारने से जो पाप होता है उसको दूर करने के लिये नीचे लिखे यजुर्वेद के मन्त्र द्वारा अग्नि से प्रार्थना करनी लिखी है—

यत्पशुर्मायुमकृतोरो वा पद्भिराहते अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान् मुञ्चत्वंहसः ।

अर्थ । हन्यमान पशु यद्मायु शब्दं कृतवान् यच्च पीडया पादाभ्यां वक्षस्थल ताडितवान् तत्पशुपीडाकरणं अग्निर्मां मोचयतु ॥

॥ भावार्थ ॥—हमारे करके नाशको प्राप्त पशु पीडाके कारण जो आर्त शब्द कर पैरों से अपने वक्षस्थल (छाती) को

३

पीड़ा कर पापसे अग्नि देव हमारी रक्षा करे अर्थात् पशुको मारते समय जो उसे दु ख होता है उससे उत्पन्न हुआ जो पाप उससे हमारी रक्षा करो इत्यादि और भी बहुतसे लेख हैं जोकि लेख बढ जानेके भयसे यहां नहीं लिखाये गये बुद्धिमान स्वयदेख सक्ते हैं.

सज्जनो ! इस सब कथनका तात्पर्य यह है कि मनुसे लेकर वेदोतक जितने ग्रंथोका लेख दिया गया है उससे यह सिद्ध हुआकि वेदादि ग्रंथो में मधुपर्क, श्राद्ध, और अग्निष्टोमादि यज्ञो में स्थावर जगमादि पशुओंका वध करना लिखा है और उसे धर्म्म माना है ॥

अब वेदोके श्रद्धालु महानुभावोके कुछ लेख यहा उध्धृत किये जाते हैं जिनसे वेदोंमें हिंसाका विधान है या नहीं ? ऐसा सदेह ही नहीं रहता !

" अशुद्धमितिचेन्न शब्दात् "

शारीरक अध्याय ३ सू० २५

इस व्यास सूत्रपर श्री शकर स्वामी लिखते हैं कि—

" हिंसानुग्रहात्मकज्योतिष्टोमस्यधर्मत्वावधारणान्न वैदिक कर्म्माशुद्धम् "

अर्थात् हिंसासे अभिष्ट फलको देनेवाला जो ज्योतिष्टोम यज्ञ है उसको धर्म रूप होनेसे वैदिक कर्म्म अशुद्ध नहीं । तथा वैष्णव संप्रदायके प्रवर्तक श्री रामानुजजी इसी सूत्रपर अपने श्री भाष्यमें यूं लिखते हैं ।

" अग्नीषोमीयादे स्तत्रनस्य स्वर्गलोकप्राप्तिहेतुतया हिंसात्वाभावरा दात पशोर्हि संज्ञपननिमित्ता स्वर्गलोकप्राप्ति वदत शास्त्रमामनति, यज्ञे हिंसित पशुर्दिव्यदेहो भूत्वा स्वर्ग लोक याति ॥ शास्त्रार्थं च कुर्वंति हिरण्यशरीरऊर्ध्व स्वर्ग लोकं याति इत्यादिकम् ॥ अतिशयिताभ्युदयसाधनभूतो व्यापारोऽल्प दुःखदोऽपि न हिंसा प्रयुतरक्षणमेवेति ॥

॥ भावार्थ ॥—अग्नीषोमीयादि पशु के वधको स्वर्ग प्राप्तिका हेतु होनेसे वह हिंसा नहीं । और पशुको मरनेसे स्वर्ग मिलता है, अर्थात् यज्ञ में मारा हुआ पशु सुवर्णके शरीरवाला बनकर स्वर्ग को जाता है अतः अतिशय सुखका साधन रूप जो कर्म्म वह थोडासा दुःख देनेवालाभी हिंसा नहीं । अर्थात् यज्ञ में मारे पशुको स्वर्ग रूप सुख विशेष प्राप्त होता है इस लिये उसके मारनेसे हिंसाका पाप नहीं । प्रत्युत रक्षा है ॥

नोट—पत्नैतन्व्यासाशयानुसारि शंकररामानुजयोर्भाष्यम् ।
भगवता व्यासेन तत्र तत्र स्थले यागीयहिंसाया निषिद्धत्वमुद्-

र्शनात् । निषेधवाक्यानि तु अस्मिन्नेव पुस्तके तत्र तत्र स्पष्टं द्रष्टव्यानि । व्यासाशयानुसारिसूत्रार्थस्तूच्यते ॥

पशुहिंसादियोगादशुद्धं वैदिकं कर्मेति तत्प्रत्यानिष्टमपि फलवत्स्यात् इत्यतो मुख्यमेवावरोहता जन्म न केवलमात्रमित्याशङ्कायां अशुद्धमितिचेन्न शब्दात् इति सूत्रम् ॥ भवतु वैदिकं कर्माशुभं तथापि न तत्कर्म व्रीह्यादि जन्म कुत शब्दात् ॥ ' स यत्सम्पातमुषित्वा ' इति श्रुतौ यावदिति शब्दात् । प्राप्यान्तं कर्मणस्तस्य यत्किञ्चेह करोत्ययम् । तस्माल्लोकात्पुनरेत्यस्मै लोकाय कर्मण । इति

श्रुतौ यत्किञ्चेह कर्म कृत तस्यान्त प्राप्नोति शब्द चेहानुष्ठितसोमयागादे कृत्स्नकर्मणस्तत्र भोगेन क्षयिरवश्रवणात् यागाग हिंसाजन्यपापप्रयुक्तं व्रीह्यादि जन्मेत्यर्थ

अथ भाव यद् यदङ्गतयाऽनुष्ठीयते तत्तत्साहित्यनैव फलं जनयति नस्वातन्त्र्येणेतिराद्धान्त । तथाच प्रधानयागाङ्गतयानुष्ठित पशुवधसोमोच्छिष्टभक्षणादिकं प्रधानकर्मविपाकस्वर्गभोगसमकालमेवानतरा दुःखशत प्रसोतुपारयति न पृथक्त्वेन ॥

पञ्चशिखाचार्यैराप्ते स्वर्गोऽप्यपकर्षमल्पमुपावेनयति इति वाक्येन स्वर्गभोगसमय एव हिंसादिकृत प्रयुक्तोऽल्पो

दुःखप्राप्तिरूपोऽल्पोऽपि हिंसादोषो न स्यात्कर्मणेति ? तत्र याज्ञीय हिंसाफलस्य दुःखस्य भोग एव भुक्तत्वान्न तत्प्रयुक्त नीत्यादि नरम अपितु मन्त्रितमुक्तदुष्कृतयोगेन पुनर्न मग्रहणाय दूर-भूतो न त्यादि सक्लेशत्व एवाभ्युपेयइति येयम् ॥ (प्रवरण.)

अर देखिये काशी के सुप्रसिद्ध महामहोपाध्याय स्वर्गीय श्री प० राम मिश्रजी प्रयागकी सनातन धर्म्म सभामें अपने व्याख्यान में क्या कह गये हैं ? "वेदाके अगर पाच भाग कल्पना किये जाय तो साय सवा तीन भागो मे हिंसा की कथा आपको मिलेगी। और पूर्व मीमासा तो साय उसी के माथे पर लिखी गई है। स्मृति शास्त्रों को यदि देखा जाय तो समस्त स्मृतियो मे आधे म हिंसा की कथा मिलेगी आधे में सब कुछ। इसी रीतिसे पुराण इतिहास यदि देखे जाय तो अर्ध भाग में हिंसा और अवशिष्ट अर्ध में और सब" इत्यादि ॥ (व्याख्यान कुसुम सनातन धर्म प्रेस मुरादाबाद सन १९०९)

काशी के सुप्रसिद्ध जगद् विख्यात महामहोपाध्याय श्री प० शिवकुमार शास्त्रीजीने ' अदालत ' में

विषयक एक लिख कर व्यवस्था दी है जिसमें आप नीचे लिखे शब्द फरमाते हैं " श्राद्ध में मछली खाना दोष नहीं। देवताको भोग लगाकर मछली खाने में दोष नहीं। मधुपर्क में पशुका मारना धर्म्म था, मधुपर्क में गौका मांस देना या बकरी का मांस देना विधि था। कलि में गो मांस देना निषिद्ध है परतु बकरीका मास देना निषिद्ध नहीं। श्राद्धमें मास देना धर्म था नरमेधभी धर्म्म था। अश्वमेध भी धर्म्म था। गौ को यज्ञ में वध करनाभी धर्म्म था इत्यादि॥ (नवजीवन मासिक पत्र अंक ५ अगष्ट सन १९११ काशी)

तथा श्रीमान् महामहोपाध्याय प० तात्या शास्त्रीजी भी केसर क्विन्स कालेज 'बनारस' भी पूर्वोक्त समुद्रयात्रा की गवाही में इस तरह फरमाते हैं "जो हिन्दुस्तान भारतमें जन्म लेकर गो मास खाय वह म्लेच्छ नहिं। बलकि म्लेच्छ वत् कहा जाये गा। ऋषिगण और उनके पूर्व पुरुष जो अष्टक और मधुपर्क में गो मास खाते थे वह म्लेच्छ कहे जा सकते हैं (आपने फिर कहा) यदि वह लोक शास्त्र विरुद्ध गो मांस खायें तो म्लेच्छवत् कहे जावेंगे।

और वह लोग शास्त्रकी आज्ञानुसार गो मांस खावें तो म्लेच्छवत् कहे न जायें गे। (भारत धर्म नेता काशी- अगस्त १९११)

इसी विषयमें (वेदोंके हिंसाके विषयमें) हमारे सनातन धर्म्म के स्तम्भभूत " ब्राह्मण सर्वस्व " के सम्पादक। इटावा निवासी श्री प० भीमसेन शर्माजीकाभी लेख जरा लखिये।

(ब्राह्मण स भा ४ अं० १ पृष्ठ १२)

जिस यज्ञादि कर्म्म में जिस प्रकार जिस पशुका बलिदान वेदमें कर्तव्य कहा है वहा वह कर्म्म हिंसा नही अधर्म्म नहीं किंतु वेदोक्त धर्म्म है "

फिर (ब्रा० स० भा० ४ अंक ५ पृष्ट १९४)

वेद शास्त्रमें विहित मद्य मांस और मैथुन में दोष नही है क्यो कि जिसका विधान किया गया वह धर्म्म कोटी में आ गया वाजपेय यज्ञमे सुराके ग्रहोका विधान है सैात्रामणि यज्ञ में सुरा नाम मन्त्रका विधान है अग्निष्टो मादि यज्ञोंमे अग्नीषोमीय पशुका विधान है और यश शेष

सोम भक्षण आभी विशेष विधान स्पष्ट रूपसे विस्तार के साथ किया गया है ॥ फिर—

(ग्रा स भा ४ अङ्क ५ पृष्ठ १९७) में अग्निष्टोमा दि यज्ञोंमें जहां जहां जैसा जैसा मद्य मांसादिका विनियोग है वह अवश्य सिद्ध होगा है तथा गो स्वामीजी वेदों में सर्वथा मद्यमांसका विनियोग नहीं ऐसा (आर्य समा जियाके तुल्य) मानते हैं ? यदि ऐसा है तबतो उनको प्रथम उचित यहथा कि वैष्णव सम्प्रदायों के सब विद्वानों की प्रथम एक राय करके स्मार्तविद्वानों के साथ वेदके विषयपर शास्त्रार्थ चलवाते सो यह असम्भव है कि वैष्णव सम्प्रदाय के सब विद्वान् सहाय यह मानते कि वेदमें मद्य मांसादि नहि ।

और यदि वेदमें मद्य मांसादिका विनियोग ठीक है ऐसा गोस्वामीजी मानते हैं तब तो उनको प्रथम यहाऽ वस्पपरही करनी चाहियथी । स्मृतियां ना वदके पीछे पीछे चलने वाली हैं वैष्णव सम्प्रदाय मद्य मांसका सर्वथा निषेध करता है और वेदमें मांसादिका विनियोग है इस लिये उनको वेदमें उपासीनता धारण करनी पड़ी

सारी राय में तो यह है कि जिन लोगोंका मत यह है कि वेदोंमें यज्ञ मांसादि सर्वथा नहिं, या है तो यज्ञिन्न है अथवा उसका अर्थही कुछ और है ऐसा माननेवाले सभी आर्य समाजियोंके बडे भाइ वेद विरोधी हैं कि जो वेदके प्रत्यक्ष सिद्धांतको उठाना चाहते हैं ॥ इत्यादि ॥

इत्यादि लेखोंसे वेदोंमें हिंसाका होना निर्विवाद सिद्ध है। इस लिये वेदोंमें हिंसाका विधान है ऐसा जैनियोंका कहना या मानना सत्य प्रतीत होता है

सज्जनो ! इस वेदोक्त हिंसक यज्ञादि कर्मोंकी निन्दा जैनियोंने ही नहीं की किंतु महर्षि व्यास कपिल प्रभृति महर्षियोंने भी की है देखो "महाभारत शांतिपर्व अध्याय १७५ में पिता पुत्रका संवाद आता है उसमें मेधावी नामक ब्राह्मणने अपनेपितासे धर्मका मार्ग पूछा है पिताने कहाके तू अग्निहोत्रादि यज्ञ कर। तब पुत्रने कहाकि—

'पशुयज्ञैः कथं हिंस्रैर्मादृशो यष्टुमर्हति'

हे पिताजी ! मेरे जैसा मुमुक्षु हिंसाकारी पशु यज्ञों द्वारा कैसे यज्ञ कर सकता है ? किंतु कदापि नही !

तात्पर्य्य कि मेरे जैसा बुद्धिमान ऐसे हिंसक यज्ञ करने योग्य नहीं।

" तातैतद्बहुशोऽभ्यस्त जन्मजन्मान्तरेष्वपि त्रयीधर्म मधर्माढ्य न सम्यक् प्रतिभाति मे "

हे पिताजी ! अन्य जन्मों में भी मैंने इस बातका बहुत अभ्यास किया है वेदत्रयी में प्रतिपादन किया हुआ धर्म्म अधर्म्म से युक्त है अत ऐसे धर्म्ममें मेरी प्रवृत्ति नहीं हो सकती "

आगे अध्याय २६५ और २७२ में बहुत विस्तार से ऐसे यज्ञादि कर्म्मोकी निंदाकी है विशेष जिज्ञासु स्वयं देख सकते हैं !

और योगभाष्य पाद २ सूत्र १३ तथा पाद ४ सूत्र १ में स्पष्ट तथा व्यास भगवानने यज्ञादि कर्म्मो को अशुद्ध बतलाया है उक्त सब ऋषियों का लेख यहां देने से लेख बहुत विस्तृत हो जावेगा बुद्धिमान उन्हीं ग्रंथोमे देख लेवे यहां दिग्दर्शन करा दिया गया है । सत्य ग्राही महानुभावोके लिये इतनाही काफी है ॥

सज्जनो ! यदिवेदोंकी निन्दा करनेवाल्हेही नास्तिक

कहे जावें तवतो वेद व्यासादि ऋषि सबसे प्रथम नास्तिक ठहरेंगे !

बडे शोककी वात है कि कोइभी निष्पक्ष होकर विचार नही करता कि आस्तिक नास्तिक शब्दका परमार्थ क्या हैं जो लोग वेदोंके घमडमें विचारे दीन अनाथ बकरे, ऊंते, गाय, बैल, घोडा आदि पशुओंको धर्म्मके नामसे यज्ञमें मार होमकर निर्दय होकर यज्ञशेष मासको खातेथे ! और उनका यह महाभयानक निर्दय कर्म्मभी वेदादि शास्त्रोक्त होनेसे धर्म्म था ऐसा कहने वाले तो आस्तिक और जिनके धर्म्म ग्रथोंमें हिंसाका विधान तो दूर रहा हिंसा शब्दभी आपको मुश्किल मिलेगा और जिनके धर्म्म ग्रथोंके पृष्ठ २ मे " अहिंसा परमो धर्म्म " का ढंढेरा सुनाइ दे रहा है वह जैनी नास्तिक ! शोक ! ! महान् शोक ! ! !

अस्तु यदिएतावन्मात्रही आस्तिक नास्तिक पनेका तत्व है तवतो मेरी सम्मतिमें जैनियोको इस आस्तिक पनेसे नास्तिक ही बने रहना अच्छा है !

सज्जनो ! यदि विचार कर देखा जाये तो इन वेदोक्त

पश्वादि हिंसक यज्ञोंमें महा पाप समझकर ही ऋषियोंने आरण्यकम आध्यात्मिक यज्ञोंका विधान किया है क्योंकि उक्त यज्ञोंमें सर्वथा हिंसा नहीं धर्म वही है जिसमें हिंसाका लेश मात्र भी सम्बन्ध न हो। इसी लिये भगवान् वेदव्यास जीने महाभारत शान्तिपर्व अध्याय १०९ में लिखा है कि—

" अहिंसार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम् ॥
यः स्यादहिंसासंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः "॥

॥ भावार्थ ॥—प्राणी मात्रकी हिंसा न करनेके लिये ही धर्मका कथन किया गया है जो कर्म हिंसासे रहित है अर्थात् जिस कर्ममें कमसे हिंसाका सम्बन्ध नहीं वही धर्म है

तथा इसी पर्वके मोक्ष धर्ममें ... ... त्विक यज्ञ कावी स्वरूप वर्णन किया है जैसे—

नानराजरिदिति प्रज्ञनपदयाभति ॥
स्वाध्यायति निर्मले तीर्थे पापपङ्कापहारिणि ॥ १ ॥
ध्यानाग्नौ जीवकुण्डस्थे दममारुतदीपिते ॥
असत्कर्म समित्क्षेपैः रग्निहोत्रं कुरुत्तमम् ॥ २ ॥
कषायपशुभिर्दुष्टैः धर्मकामार्थनाशकैः ॥
शममन्त्रहुतैर्यज्ञं विधेहि विहितं बुधः ॥ ३ ॥

प्राणिघा ता सुयो धर्म्ममीहते मृढमानस ॥
स वाञ्छति सुधावृष्टिं कृष्णाहिमुखकोटरात् ॥ ४ ॥

भावार्थ–हे राजन्! ज्ञानरूप पाली (पाल) पर गिरा हुआ ब्रह्मचर्य्य और दया रूप जल जिस में ऐसे पाप रूप कीचडको दूर करनेवाले अत्यन्त निर्मल तीर्थमें स्नान कर जीव रूप कुडमें दमरूप पवनसे प्रज्वलित हुई जो ध्यान रूप अग्नि उसमें अशुभ कर्म रूप काष्ठको गेरकर उत्तम अग्नि होत्र करते। तथा धर्म्म अर्थ और काम को नाश करने वाले जो दुष्ट कषाय रूप पशु उनका शम रूप मत्रसे पूर्वोक्त अग्निमें हवनकर ज्ञानवान् पुरुषो द्वारा कहे हुए ऐसे यज्ञको तुम करो ॥

जो मूढ पुरुष जीवोंको मारनेसे धर्म्म प्राप्तिकी इच्छा करता है वह काले सर्प के मुखसे अमृतकी वर्षाकी इच्छा करता है अर्थात् जीवोंका वध करनेसे धर्म्म कभी नहीं होता ॥ तथा अन्यत्रभी लिखा है कि—

" देवोपहारव्याजेन यज्ञव्याजेन योऽथवा ॥
घ्नंति जन्तून् गतघृणा घोरां ते यान्ति दुर्गतिम् ॥ "

॥ भावार्थ ॥—दयासे रहित जो मनुष्य देवताकी भेट वा यज्ञोंके बहानेसे जीवोंका वध करते हैं वह घोर

दुर्गति (सप्तम नर्क) को जाते हैं । इत्यादि ऐसे अध्यात्म यज्ञोंका जैन ग्रथोंमें भी बहुत वर्णन आता है

जैसे उत्तराध्ययन सूत्रमें वर्णन आता है कि हरिकेशिबल नामक मुनि वाराणसी नगरी में भिक्षाके लिये गये वहां यज्ञ करते हुए ब्राह्मणोंको देख मुनिने कहाकि ऐसा हिंसात्मक पशु यज्ञ करना तुमको योग्य नही है । तब ब्राह्मणोंने कहाकि हे मुने ! आप कैसा यज्ञ मानते हो ? मुनिने जवाब दियाकि पांच आस्रव (हिंसा, असत्य, स्तेय (चोरी) मैथुन और परिग्रह (मूर्छा) रूप पाप के मार्गको पांच सवर अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूपयम द्वारा रोक, शरीरका ममत्व त्याग निर्मल व्रताचरण रूप यज्ञ करना चाहिये । यह सुनकर ब्राह्मणोंने पूछा हे मुने ! आपके माने श्रेष्ठ भाव यज्ञ में ज्योति अग्नि क्या चीज है ? अग्निका स्थान क्या है ? श्रुच घृतादि डालनेकी कड़छी क्या है ? अग्निके उद्दीपनका हेतु करीषांग क्या है ? एधम् काष्ठ क्या है ? दुरित पापके उपशमन रूप अध्ययन पद्धति शांतिपाठ क्या है ? और किसविधिसे आप हवन करते

लोगोको छोडकर इसाई मुसलमान, यहुदी, पारसी
सब संसारही नास्तिक होजावेगा
क्योंकि इनमेंसे तो वेदको कोईभी नही मानत
ज्जनो ! पक्षपात रहित होकर विचारा जावे तो
वादी (आत्माको जो न माने) के विना मनुष्यमात्र
आस्तिक है चाहे वह किसी धर्म्मको माननेवाला हो इस
लिये आत्मा और परलोकको निर्विवाद स्वीकार करनेवाले
जैनियोंको एकदम नास्तिक कह देना महा भूल है ! अतम
सर्व बुद्धिमान मनुष्योंकी सेवामें प्रार्थना है कि वह मेरे
इस लेखको निष्पक्ष होकर देखें देखकर सत्यासत्य का
निर्णय करें क्योंकि शास्त्रमें लिखा है ॥

" आगमेन च युक्त्या च योऽर्थः समधिगम्यते ।
परीक्ष्य हेमवत् ग्राह्य पक्षपाताग्रहेण किम् ॥ १ ॥

दास
निखिल विदुषामनुचरो हंसराज